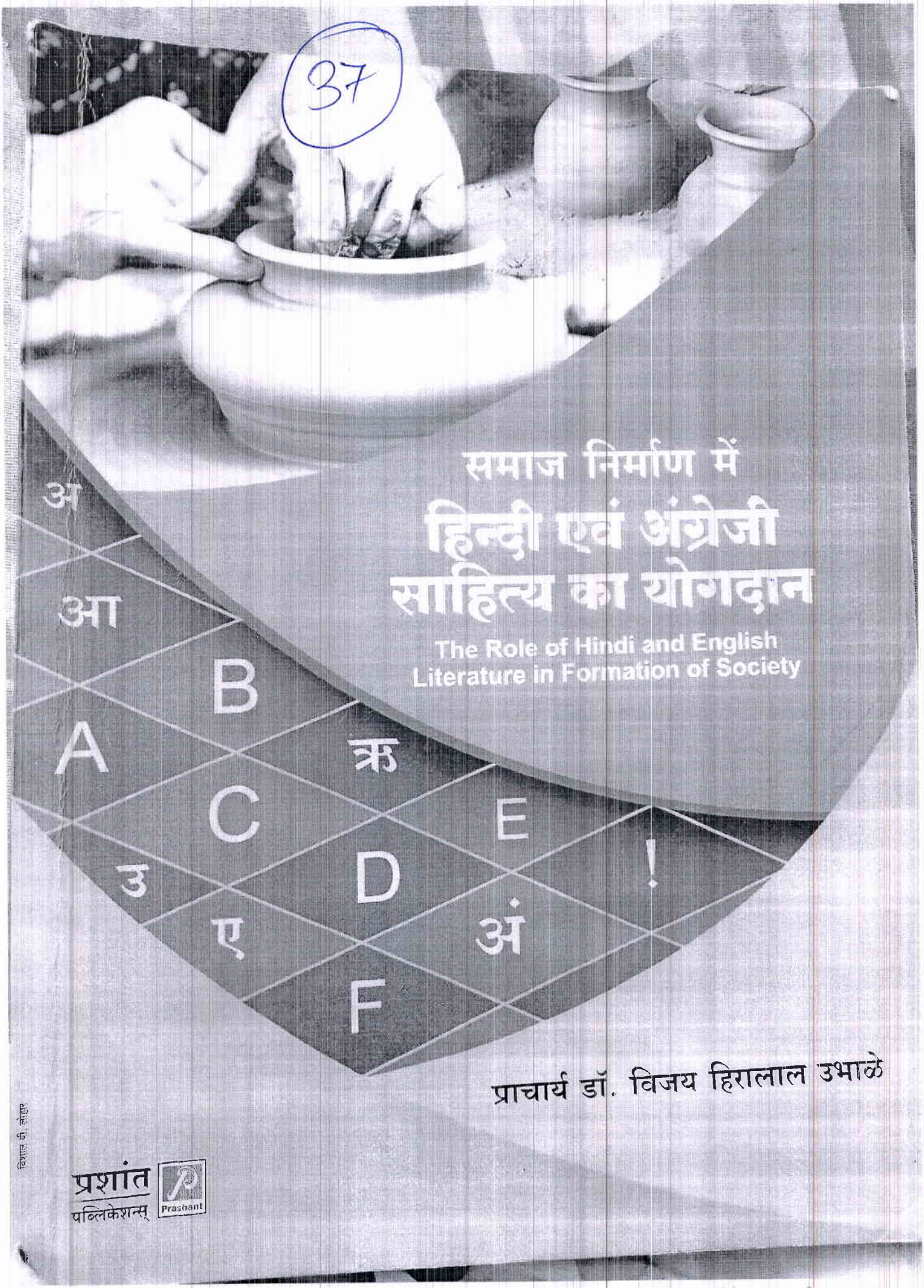

37

समाज निर्माण में हिन्दी एवं अंग्रेजी साहित्य का योगदान

The Role of Hindi and English Literature in Formation of Society

प्राचार्य डॉ. विजय हिरालाल उभाळे

विशाल पी. लोहार

प्रशांत पब्लिकेशन्स्
Prashant

Scanned by CamScanner

26) हिंदी ग़ज़ल साहित्य में मानवतावादी दृष्टीकोण ज्ञानप्रकाश विवेक की ग़ज़लों के विशेष संदर्भ में 90
मनोज नामदेव पाटील

27) अर्थहीन समाज को दिशा प्रदान करती ग़ज़लें(दुष्यंतकुमार त्यागी के संदर्भ में) 94
प्रा. विनोद विश्वासराव पाटील

28) जीवन संघर्ष की दुनिया ..... प्रश्न के बीच प्रश्न 97
प्रा. शांताराम वळवी

29) आदिवासी जीवन पर केंद्रीत उपन्यास की संरचना 100
मनोहर हिलाल पाटील

30) आदिवासी साहित्य की समाज निर्माण में भुमिका 103
श्री. अनिल बाबुलाल सूर्यवंशी

31) हिंदी दलित साहित्य में मानवधिकार 106
प्रा.डॉ.महेंद्र रघुवंशी

32) दलित विमर्श और वर्तमान सामाजिक परिदृश्य (समकालीन हिंदी कविता के विशेष संदर्भ में) 110
प्रा. बहिरम देवेंद्र मगनभाई

33) साहित्य में दलित, पददलित उत्पीडन 114
प्रा. अविनाश बुधा अहिरे

34) साहित्य में दलित, पददलित उत्पीडन समकालीन उपन्यास साहित्य में दलित समाज:एक अनुशिलन 118
प्रा. डॉ. जिजाबराव विश्वासराव पाटील

35) हिंदी मराठी की दलित आत्मकथाएँ 121
प्रा. डॉ. सुनीता नारायणराव कावळे

36) जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' में मानवतावाद 124
प्रा.डॉ. सुनिल पानपाटील

37) रामधारी सिंह 'दिनकर' का मानववादी दृष्टिकोण ('कुरुक्षेत्र' के विशेष सन्दर्भ में) 129
प्रा. डॉ. अजित चुनिलाल चव्हाण

38) खडी बोली रामकाव्य में वर्णव्यवस्था : एक अध्ययन 133
डॉ. कान्ता एम. भाला

39) सामाजिक परिप्रेक्ष्य के धरातल पर जन्मी कहानियाँ 136
प्रा. डॉ. जगदीश चव्हाण

४0) लघुकथाओं मे प्रतिबिंबित हुए सामाजिक विचार 140
प्रा.डॉ.कल्पना राजेंद्र पाटील

Scanned by CamScanner

दलित विमर्श और वर्तमान सामाजिक परिदृश्य
(समकालीन हिंदी कविता के विशेष संदर्भ में)

प्रा. बहिरम देवेंद्र भगवान
महाराजा जिवाजीराव शिंदे महाविद्यालय श्रीगोंदा,
जिल्हा अहमदनगर, पिन : ४१३७०१

वर्तमान समाज की आधारशीला आर्थिक परिस्थिती पर निर्भर है, आर्थिकता को केंद्र में रखकर सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि समाज की प्रमुख संस्थाएँ विकसित होने के दौर में समाज के दबे - कुचले वर्ग अर्थात दलित आदिवासी, स्त्री आदि शोषन सूक्ष्म स्तर पर तीव्र गति से हो रहा है । वैश्विकरण की चकाचौंध में यह शोषन चक्र स्थुल रुप से प्रस्तुत नहीं होता है । लेकिन इसका जहरिला हमला समाजिक सुदृढता और राष्ट्रहित के लिए घातक है । समकालीन हिंदी साहित्य में उपन्यास कहानी, आत्मकथ, नाटक आदि विधाओं के साथ काव्य में स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि वैचारिक के रुप में विकसित हो रहा है । म. फुले, डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर, राजर्षी शाहू आदि समाज सुधारवादीयों के तत्वज्ञान का प्रभाव भारतीय साहित्य पर हुआ है, जिसमें मराठी साहित्य का विशेष योगदान है, जिसके कारण दलित चेतना को साहित्य में स्थापित हुआ है ।

समकालीन हिंदी कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकी, सुशीला टाकभौरे, कंवल भारती, सोहनपाल सुमनाक्षर, सुरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम आदि दलित विमर्श, द्वारा सामाजिक प्रतिबद्धता का सराहनिय योगदान दिया है । भारतीय समाज व्यवस्था का यथार्थ रुप दलित काव्य में प्राप्त होता है । समकालीन कविता प्रमुखत: से जनवादी कविता के रुप में लोकप्रिय हुई थी । दलित चेतना का स्वर समकालीन कविता में प्रखरता से बीसवीं सदी के अंतिम दशको से आरंभ हुआ था । इक्कसवीं सदी का समकालीन कवि अपने विद्रोह के स्वर को सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत कर रहा है । ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते है,

"बिना पसीने की फसल / या कविता / बेमानी है
आदमी के विरुध्द आदमी का षढयंत्र / अंधे गहरे समंदर सरीबा
जिसकी तलहटी में / असंख्य हाथ /"[१]

यहाँ पर ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी सामाजिक प्रतिबध्दता को पहचानते हुए, दलित वर्ग को संवर्ण समाज के षढ्यंत्रो से बचने की सलाह देते है । समकालीन कविता ने समाज में रहना है तो जाग्रत रहने की चेतावनी दी है । हरपाल सिंह 'अरुष' की टिप्पणि महत्वपुर्ण लगती है, "यदि साहित्य भी कला की श्रेणी में आता है, तो उससे अस्त्र का काम लिया ही जा सकता है । और यह काम साहित्य से भी लिया गया है । कबीर और रैदास ने लिया है तो तुलसी ने भी लिया है , फिर दलित साहित्य के रचनाकार क्यों नही ले सकते । केवल लडाई-लडाई या संघर्ष संघर्ष के नारे देकर नहीं, अपितु एक सुनियोजित वैज्ञानिक प्रक्रिया से तार्किक पध्दति का सहारा लेकर यह विरोध किया जा सकता है ।"[२] अर्थात वर्तमान समय में दलित विमर्श की दिशा तथ करना आवश्यक है ।

भारतीय समाज में पिछडे हुए दबे हुए वर्ग में जन-जागृति महान विभूतियों ने की है, पर दिक्कत यहाँ पर महसुस होती है कि, म.फुले, अंबेडकर के अनुयायी समझे जानेवाले स्वंय घोषित नेतृत्व ने अपने सत्ता मोह और बनावटी अस्मिता के कारण दलित आंदोलन को कमजोर कर दिया है । वही साहित्यकार का कार्य आरंभ होता है । सर्व-सामान्य दलित एवं पिछडा वर्ग स्वंयघोषित नेताओं वर्तमान में अविश्वास दिखा रही है, तब इसी वर्ग का विश्वास समकालीन साहित्यकार पर अधिक होता है । दलित विमर्श को प्रकट करनेवाले कवि का दायित्व महत्वपुर्ण हो जाता है । जयप्रकाश कर्दम अपनी तेजोमय लेखनी द्वारा कहते है -

Scanned by CamScanner

''अपनी सत्ता साम्राज्य को / सुरक्षित रखने के लिए
मिटाएँगे वे मुझे ही / जिंदा रखेंगे वे वर्ण और जाति
वर्ण भेद और साम्प्रदायिकता ।''[3]

इन पंक्तियों से हमारे ध्यान में आता है कि, सत्ता-मोह ने दलित आंदोलन को तोड़ दिया है । इसे सामान्य दलित की माँग मूलभूत समस्याएं है । जिसकी ओर दलित नेताओं और सत्ताधारियों ने ध्यान नहीं दिया है । समकालीन कविता में इस सत्ता लोलुपता और अनुयायियों के सुनियोजित विद्रोह के नाटक का खुलकर विरोध किया है । जिस देश में अहिंसा परमो धर्म के नारे लगाये जाते है । विश्व में शांति दूत की भूमिका निभानेवाले देश में दलितों की झोपडियाँ जलाना, नग्न करना, विस्थापित करना, अपहरन करना तथा शारीरिक-मानसिक रूप से प्रताड़ित करना भी आम हो रहा है, उस देश के दलित एवं पिछडेवर्ग को तीव्र आंदोलन करके क्रांति की मशाल को जलाना आवश्यक है । इसी मशाल को प्रज्वलित करने का कार्य समकालीन कवि कर रहा है । प्रख्यात दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय कहते है -

''न तो तुम सामंत हो न माफिया
जिनके पास हथियार बंद गिरोह होते है ।
तुम्हारे पास केवल शब्द है / उन्हीं को आंदोलन बनाना है ।
क्रांति हथियारों से नहीं / शब्दों से आती है ।''[4]

यही स्वर दलित विमर्श की शक्ति है, जो समकालीन कविता को उत्तर-आधुनिक बनाती है । वह काव्य समाज सापेक्ष बन जाता है । दु:ख की आग से पैदा हुई शक्ति ही हमें ब्राम्हणवादी मानसिकता से बचायेगी और हर तरह से अँधेरे को चीरकर उजाला करने की शक्ति का निर्माण समकालीन कवि करता है । सुशीला टाकभौरे कहती है,

''प्रथम तुम करो प्रयाण/ पाने निश्चित उध्देश,
पग चिहनों पर रख पांव / बढ़ू निरन्तर
मैं भी दे सकू साथ / तम से घिरे मार्ग को ।''[5]

यहाँ पर सुशीला टाकभौरे परम्परागत व्यवस्था में जाति-वर्ण पर आधारित समाज का विरोध करके अम्बेडकरवादी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में आस्था रखनेवाला समाज निर्माण करने की माँग करती है । वे दलित आंदोलक एवं सुधारकों के क्रांति का उद्देश निश्चित करने के लिए प्रेरित करती है । 'दलित विमर्श' वर्तमान समाज में 'सत्यम शिवम सुंदरम' की मांग करता हुआ सामाजिक न्याय की स्थापना करना चाहता है । ओमप्रकाश वाल्मीकी अपने दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र इस ग्रंथ में ''वैज्ञानिक दृष्टिकोन, पाखंड.कर्मकांड. का विरोध, वर्ण और वर्गहीनसमाज की पक्षधरता स्वतंत्रता-सामाजिक न्याय की पक्षधरता, भाषावाद लिंगवार का विरोध, डॉ. अम्बेडकर दर्शन का स्वीकार आदि दलित विमर्श के तथ्यों को स्वीकार करते है''[6] यही तथ्य समकालीन कवियों ने स्वीकार करके उपेक्षित दबे कुचले वर्ग की वेदना को वाणी देकर अपना योगदान दिया है । समकालीन दलित हिंदी कविता सौंदर्य के पारम्परिक मापदंड. बदल देती है । वर्ण -व्यवस्था और पारम्परिक भारतीय साहित्य से उपजी सामाजिक दृष्टि ने नैतिक एवं साहित्यिक मूल्यों को संकीर्णता के दायरे में बाँधा है । जिसे तोड़ना समकालीन कवि का कर्तव्य है ।

समकालीन हिंदी कवि 'सत्यम शिवम सुदंरम' सूत्र के अनुसार सत्य और शिवत्व पर अधिक जोर देता है, क्योंकि वही समाज हित हेतु 'सुंदर' है । वर्तमान समाज व्यवस्था की जडो को खोकला करने में राजनैतिक दलों का सर्वाधिक योगदान है । प्रगतिवादी चेतना के संवेदनशील कवि 'नागार्जुन' ने यह पहले ही पहचान लिया था वे कहते है -

''लगता है / प्रजातंत्र का रथ / उतर गया है पटरी से
सारी के सारी पार्टीयो के नेता / रुचि पूर्वक खेल रहे है

Scanned by CamScanner

दलीय स्वार्थो के शतरंज ।''[७]

अर्थात नागार्जुन ने दलीय राजनीति, संघटना संस्था को चेतावनी दी है कि, यह समाज विघातक है। दलित सामाजिक संघटनों के हालात जर्र जर्र हो गये है । सामान्य मनुष्य असमंजस में है । दलित वर्गो के आंदोलन मंद किये जाते है , विद्रोह संघर्ष ठंडा पड रहा है, जो दलित जागरण के लिए घातक है । रमणिका गुप्ता दलित चेतना के संदर्भ में कहती है, ''दलित चेतना की सबसे पहली शर्त है उसका विरोध का स्वर, पीड़ा की छटपटाहट, आक्रोश का तेवर और उसके साथ ही कहीं उगता हुआ परिवर्तन के लिए संकल्प ।''[८]

इसी प्रकार परिवर्तन के लिए संकल्प रुप में अर्थात सामाजिक परिवर्तन का ध्येय सर्वसामान्य लोगों में भरना आवश्यक है । समकालीन कविता की यह समाज को यह महत्वपूर्ण देन है कि, परिवर्तन एवं क्रांति दबावग्रस्त अवस्था में ही होती है, शब्द क्रांति के निर्माता बन जाते है । भारतीय समाज में सवर्ण या ब्राह्मणवादी समाज में क्रांती नहीं हुई है । सवर्ण समाज ने हमारे सम्मुख ढोंगी और झूठे आदर्श प्रस्तुत किए है उसका विरोध समकालीन दलित कवि कंवल भारती करते हुए लिखते है –

''तुलसीदास / सुना है तुम दर–दर के भिखारी थे
इतने दरिद्र / कि चार – चार दानों के लिए
ललकते फिरते थे कुत्ते के समान ...
तुलसीदास / तुम तो मार्क्स से भी ज्यादा गरीब थे
तुमने भारत में क्रांति क्यों नहीं की''[९]

'दलित विमर्श' को अस्तित्व स्थापित करते हुए कवि इतिहास पर प्रश्नचिहन उपस्थित करते है । ब्राम्हणवादी शोषक परंपराओं का विरोध करना, यही कविता का भाव पक्ष है, जो समाज सापेक्ष है। जयप्रकाश कर्दम के शब्दों में हम यह कह सकते है, ''दलित साहित्य वस्तुत दलित अस्मिता और अस्तित्व के लिए ब्राम्हणवाद का नकार आवश्यक है । नकार और विरोध की यह आग ही दलित आंदोलन की शक्ति है; यदि यह आग नहीं रहेगी तो फिर दलित साहित्य के कोई मायने नहीं रहेंगे ।''[१०]

इस प्रकार संघर्ष और विद्रोह की चेतना समाज में निर्माण करना ही दलित कविता का उद्देश है । सुरजपाल चौहान विद्रोह की भाषा में कहते है –

''कदम कदम मक्कारी क्यों / दलितों से गद्दारी क्यों
आत्मकथा लेखन पर चर्चा / कवित्त है तुम पे भारी क्यों
खरी-खरी मैं लिखता हूँ / इस पर पहरेदारी क्यों
दलितों की बस्ती में अब तक / वर्ण–भेद है जारी क्यों''[११]

अर्थात इक्कसवी सदी में भी वही हालात है । शारीरिक शोषन अब तक होता ही रहा है पर भावनात्मक स्तर पर मानसिक उत्पीडन से दलितों को अधिक आहत किया जा रहा है । दलित समाज के मनुष्य ने जिस क्षेत्र में अपनी योग्यता सिध्द करने की कोशिश की है, वही उसे आहत करने के षढयंत्र रचे जाते है । जिसका इलाज खोजना समकालीन कवि का लक्ष्य है । समकालीन दलित साहित्य की प्रमुख देन यही है कि, उसके द्वारा अभिव्यक्ति में प्रखरता की शक्ति और पीडित को आत्मविश्वास दिलाता है । हिंदी कविता का यही लक्ष्य है । व्यवस्थाओं के प्रति आक्रोश का स्वर तेज करके परिवर्तन के लिए संकल्प करने की शक्ति दलित कवि प्रदान करता है । दलित कवि के खिलाफ आक्रोशमयी व्यंग्य में है । जिसके द्वारा समाज में क्रांति की मशाल फिर से प्रज्वलित हो सकती है । कलाकार की सामाजिक प्रतिबद्धता का सही अर्थ दलित कवि जानता है, यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी । ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते है –

Scanned by CamScanner

"शारीरिक यातनाओं से / बडी यंत्रण होती है -
ईच्छाओं के विरुध्द जीना / या देखते देखते छिन जाना
उन क्षणों का / जिनसे हँसा जा सकता था ।"[१२]

यही मानसिक त्रासदी आदर्श समाज की संरचना को कमजोर बना रही है । दलित विमर्श की अभिव्यक्ति समकालीन कविता में सशक्त रुप से हुई है । समकालीन कवि की यही समाज के प्रति प्रतिबद्धता ही एक आशापूर्ण वातावरण का निर्माण करती है । निष्कर्ष रुप में हम कह सकते है कि, समकालीन हिंदी कविता का सामाजिक परिदृश्य दलित, पीडित, प्रताडित और दबे कुचले वर्ग में आशा का संचार है । भ्रष्ट राजनीति और षढयंत्र करनेवाला ब्राम्हणवादी वर्ग पर एक तीखी चोट है, जो अनकी एकांगी सोच को तोडने का कार्य करती है । समता, बंधूता, धर्मनिरपेक्षता आदि नैतिक तत्वों एवं मूल्यों द्वारा मानवतावाद की स्थापना ही कवि का उद्देश रहा है । दलित-पीडित वर्ग के मुलभूत अधिकारों एवं नैतिक मूल्यों की रक्षा करने की जिम्मेदारी समकालीन हिंदी कवि ने उठाई है । सुशील टाकभौरे दलितों में सकारात्मक दृष्टिकोन निर्माण करते हुए कहती है -

"उठने दो कर्मठ हाथों को / आकाश तक
तुम भी तीन डग़ में नाप लो / सम्पूर्ण विश्व
विधाता एक मुट्ठी चावल / तुम्हीं से मांगेगा ।"[१३]

संदर्भ ग्रंथ

१. ओमप्रकाश वाल्मीकी - प्रतिनिधि कविताएँ, पृ . १९
२. हरपाल सिंह 'अरुष' - दलित साहित्य की भूमिका पृ.२५
३. जयप्रकाश कर्दम - तिनका तिनका आग, पृ. २०-२१
४. मोहनदास नैमिशराय - २१वी सदी का दलित आंदोलन, पृ. ३८
५. सुशीला टाकभौरे - स्वाति बूंद और खारे मोती , पृ. २६
६. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र पृ.
७. नागार्जुन - हजार-हजार बाहोंवाली , पृ. १८०
८. रमणिका गुप्ता - दलित चेतना (साहित्य) , पृ. ८२
९. कंवल भारती - तुलसीदास, तब तुम्हारी निष्ठा कया होती १ पृ. ७१
१०. जयप्रकाश कर्दम - समकालीन भारतीय दलित समाज -संपा. डॉ.कुमार , पृ. २१६
११. सुरजपाल चौहान - कब होगी वह भोर पृ. ७१
१२. ओमप्रकाश वाल्मीकी - बस्स बहुत हो चुका , पृ. ३४
१३. सुशीला टाकभौरे - हमारे हिस्से का सूरज , पृ. १३९

Scanned by CamScanner